जनवरी – फरवरी, 2020 • मूल्य 50/-

अलकनंदा

जन सरोकारों को समर्पित

कुली बेगार आंदोलन के सौ वर्ष

उत्तरायणी: स्वतन्त्रता आंदोलन की चेतना का शताब्दी वर्ष

वसंतोत्सव

वाग्देवी की आराधना और लोकजीवन का उल्लास पर्व

- साक्षात्कार
- आलेख
- संस्मरण
- कहानी
- कविता

लिखने और उसे लोगों तक पहुंचाने का यह बेहतरीन समय

जाने-माने कहानीकार, यात्राकार और वीडियो ब्लॉगर **उमेश पंत** से **पूजा अकोलिया** की बातचीत

लगभग तीन साल पहले एक सफर के दौरान रेडियो पर आ रहे 'यादों का इडियट् बॉक्स' नाम से एक शो को सुनते हुए उमेश पंत और उनकी लिखी कहानी से पहली पहचान हुई। यह रेडियो का बेहद लोकप्रिय शो रहा है जिसके वाचक थे नीलेश मिश्रा। उसके बाद यदा-कदा उमेश का नाम सुनने को मिलता तो जाना पहचाना सा लगता। उनकी लिखी कहानियां अपनेपन का एहसास कराती थीं। शायद, उनमें मेरे पहाड़ का रस था....इसलिए! धीरे-धीरे रेडियो से इतर यह नाम सोशल मीडिया के जरिए भी सामने आने लगा। जब साथी लेखकों के परिचित लोगों की लिस्ट में उनका नाम देखती तो उनके बारे में और जानने की और जिज्ञासा मन में जागी। पता चला कि कहानीकार के अलावा उमेश एक यात्राकार और फोटोग्राफर भी हैं। आदि कैलाश की दुर्गम यात्रा पर उनकी पुस्तक 'इनर लाइन पास' छप चुकी है और हाल ही में 'दूर दुर्गम दुरुस्त' नाम से यात्रा संदर्भित पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसका पिछले दिनों पुस्तक मेला में विमोचन हुआ।

अगर आप गांव से शहर आते हैं तो आप अपने साथ पूरा लोक लेकर आते हैं। आपके पास एक भरी-पूरी नयी दुनिया होती है जिसे शहर में बहुत कम लोग जानते हैं। अगर अपने लोक की अच्छी बातों को लेकर गर्व का भाव रहेगा तो अपनी लोकभाषा बोलने में कभी शर्म नहीं आएगी। अब तो पिथौरागढ़ में बैठा कोई 'ठेठ पहाड़ी' यूट्यूब पर ठेठ पहाड़ी भाषा में वीडियो बनाकर दुनिया भर में मशहूर हो रहा है

सबसे पहले अपने गांव और परिवार के विषय में बताएं।

मेरा पैतृक गांव चिटगल है लेकिन बचपन में ही हम पास के कस्बे गंगोलीहाट आ गए। यह उत्तराखंड के पिथौरागढ जिले का छोटा सा कस्बा है। अपनी मूलभूत जरूरतों के लिए आस-पास के करीब 80 गांव इसी कस्बे पर निर्भर हैं। पहाड़ की गोद में बसा एक शांत सा हरा-भरा इलाका है यह जो शहर बनने की कोशिश में है। पर्यटन मानचित्र पर गंगोलीहाट को मशहूर कालिका मंदिर और पाताल भुवनेश्वर की गुफा के लिए जाना जाता है। मंदिर के रास्ते में आज भी नौले बने हैं जो एक समय तक कई पहाड़ी इलाकों में पानी का एकमात्र स्रोत हुआ करते थे। कालिका के मंदिर में जाने वाली 'अठवारें' इसी कस्बे की सड़कों से होकर गुजरती हैं जिनमें अब भी बीच बाजार 'औतरती' हुई औरतें दिखाई दे जाती हैं। रामलीला की 'तालीम' और उसके मंचन का आज भी क्रेज है। जीआईसी के मैदान में आज भी 'किरकेट' का टूर्नामेंट होता है तो छोटे बच्चे 'हिप-हिप हुर्रे' करते हुए मिल जाते हैं। मूलत: पहाड़ का रस इस छोटे से कस्बे में अब भी भरपूर है।

आपकी प्रारंभिक शिक्षा गांव से जुड़े कस्बे में हुई। वहां से दिल्ली-मुंबई और फिर विदेश तक का सफर कैसा रहा?

शुरुआती पढ़ाई गंगोलीहाट नाम के कस्बे से ही हुई। इंटरमीडिएट के लिए मैं जिला मुख्यालय पिथौरागढ़ आ गया। वहां विवेकानंद विद्या मंदिर में दो साल पढ़ाई की। इसी स्कूल से पहली बार लखनऊ जाने का मौका मिला। तब दिल्ली तो हमें विदेश जैसा ही लगता था। कोई दूसरी दुनिया- जहां पहुंचने के बारे में कभी सोचा ही नहीं लेकिन मेरी दीदी कंचन किसी तरह पत्रकारिता के कोर्स के लिए पहली बार दिल्ली आई। ये घर वालों के लिए बड़ा फैसला था। मैंने उसी के कहने पर जामिया में ग्रेजुएशन के लिए परीक्षा दे दी। लिखित परीक्षा में पास हो गया तो इंटरव्यू के लिए आत्मविश्वास आ गया। रचनात्मक लेखन का कोर्स था और मेरी कविताएं और लेख इससे पहले पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहे थे तो इंटरव्यू में भी पास हो गया। कुछ तो था जो लगातार काम करता रहा और एक छोटे से कस्बे से दिल्ली और फिर मुंबई तक का सफर तय होता रहा।

लेखन में आपकी रुचि कब और कैसे जागी?

मैं बचपन से ही कविताएं लिखता था। मेरे पास छोटी सी डायरी हुआ करती थी जिस पर लगातार स्केचपेन से सजा-सजा के कविताएं लिखता और फिर घर वालों को सुनाता था। उन्होंने उत्साह बढ़ाया तो लिखना जारी रहा। स्कूल में भाषण देने का भी बहुत शौक था और अपने भाषण भी मैं खुद ही लिखता था। बाद में कई दूसरे बच्चे भी मुझसे अपने भाषण लिखवाने लगे। जब मैं नवीं क्लास में था तो एक

राष्ट्रीय अखबार ने मेरा एक लेख बड़ी प्रमुखता से छापा। यह मेरे लिए बड़ी बात थी। उत्साह बढ़ता गया और अखबारों से किताबों तक का सफर भी तय हो गया।

यात्रा शब्द के क्या मायने हैं आपके लिए। इस रूप में कैसे रहे आपके अनुभव?

यात्राएं मुझे खुद को जानने का सबसे बेहतर जरिया लगती हैं। मैंने एक कविता में लिखा भी है कि 'यात्रा में होना अपना हुआ उतारकर जिंदगी का उतारा हुआ पहन लेना है। यात्राएं आपको आपकी संकीर्णता का अहसास भी कराती हैं। कई बार एक शहर और एक रूटीन की जिंदगी जीते हुए हमें खुद ही नहीं पता होता कि हमारी सोच कितनी छोटी है। हम अपने छोटे से दायरे से उपजे जीवन दर्शन की कसौटी पर सबको कसने लगते हैं और 'जज' करने लगते हैं। लेकिन यात्राओं के दौरान आप सैकड़ों लोगों को सैकड़ों परिस्थितियों से जूझते हुए देखते हैं और समझ आता है कि जीने का कोई एक 'सही' तरीका नहीं है। सही या गलत एक परिस्थितिजन्य अवधारणा है। किसी का सही किसी और का गलत हो सकता है। इस तरह यात्राएं आपको सर्वग्राही होना सिखाती हैं और बेहतर इंसान भी बनाती हैं। लम्बी यात्राएं तो एक तरह का मेडिटेशन ही होती हैं। खुले भाव से यात्राएं करेंगे तो आपके ही भीतर की इतनी तहें खुल जाएंगी कि आपको नएपन का अहसास होने लगेगा। मैं मानता हूं कि हर यात्रा के बाद आप अपने पुरानेपन में नया होकर लौटते हैं।

गांव से शहरों की ओर हो रहे पलायन को आपने अपनी यात्रा में कितना देखा और जाना है?

मैं खुद पलायन करके शहरों की तरफ आ गया तो पलायन को तो मैंने भी जिया है। यह सिस्टम के तौर पर हमारी विफलता है कि हम गांवों में इतनी मूलभूत सुविधा भी नहीं दे पाए कि लोगों को मजबूरी में इन्हें छोड़ना पड़ा। गांव जाओ तो यह देखना उदास करता है कि वहां के कई घर अब खंडहर बन चुके हैं। कमोबेश पूरा कुमाऊं स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए हल्द्वानी पर निर्भर है और वहां के अस्पतालों में लूट मची हुई है। मरे हुए आदमी को 2-2 दिन वेंटिलेटर पर रखकर पैसे की उगाही की जाती है। दिल्ली में जो भी मिलता है, हर किसी का सपना पहाड़ में जाकर रहना होता है लेकिन पहाड़ की अपनी सच्चाइयां हैं जो उसे जिए बिना समझ नहीं आ सकतीं। वहां से लौट आए हम ज्यादातर लोगों के लिए पहाड़ एक नोस्टेल्जिया है। वहां न रह पाना और उसके लिए कुछ न कर पाना कभी-कभी बेहद सालता है। पहाड़ की याद एक अपराधबोध भी है जिसे हम पलायन कर चुके लोग जीने के लिए अभिशप्त हैं। मैंने यात्राओं के दौरान देखा कि पलायन हर दुर्गम इलाके की समस्या है। चाहे पूर्वोत्तर के हिस्से हों या उत्तर-प्रदेश के गांव- हर जगह के लोग दिल्ली, मुम्बई या बड़े शहरों की तरफ आने को मजबूर हैं। हमने अपने आर्थिक तंत्र को कुछ इसी तरह से ढाल दिया है कि पलायन अब एक विकराल समस्या है और एक बड़ी मजबूरी भी।

आपकी कहानी लेखन की शुरुआत रेडियो से हुई या फिर उससे भी पहले?

रेडियो से पहले बस अपने लिए कुछ कहानियां लिखी थीं। एक कहानी मेरे ब्लॉग में थी जिसे पढ़कर ही नीलेश मिश्रा ने मिलने बुलाया। मुंबई में हमने मिलकर लेखकों का एक समूह बनाया जिसे मंडली नाम दिया गया। मैं नीलेश जी से जुड़ने वाला पहला राइटर था। फिर धीरे-धीरे लोग जुड़ते रहे। रेडियो के लिए मैंने पचास से ज्यादा कहानियां लिखी जिन्हें नीलेश जी ने करोड़ों लोगों तक पहुंचाया।

अपनी किताब 'इनर लाइन पास' के विषय में कुछ बताएं।

'इनर लाइन पास' मेरी पहली लम्बी यात्रा की उपज है जो करीब-करीब जानलेवा ही हो गई थी। दिल्ली से मैं और मेरा एक दोस्त रोहित एक दिन यूं ही आदि कैलाश की यात्रा के लिए निकल गए। धारचूला से जैसे-जैसे ऊपर बढ़ते रहे, ऐसा लगा जैसे इतिहास के किसी और हिस्से में चले आए हों। एकदम नयी दुनिया थी यह। एकदम नए रास्ते। ऊंचे-ऊंचे पहाड़। 18 दिनों की इस यात्रा में जैसे किसी रोमांचक फिल्म का हिस्सा हो गए थे हम। पांच हजार मीटर के करीब की ऊंचाई पर खड़े होकर जब आस-पास देखा तो बर्फ से ढंके पहाड़, जिन्हें अब तक पोस्टरों में ही देखा था- वो हमारे कदमों के नीचे थे। अद्भुत अहसास था यह। लौटते हुए बारिश इतनी बढ़ गयी कि जबरदस्त भूस्खलन शुरू हो गया। नदी के पास हमारे सामने वह पुल बह रहा था जिसे हमें पार करके अगले पड़ाव में पहुंचना था। बिना आग, बिना खाने और रहने की जगह के एक रात जंगल में बितानी पड़ी। हम लगातार भीग रहे थे। तापमान शून्य के करीब जा रहा था। रात गहरा रही थी और हम सोच रहे थे कि सुबह तक जिंदा भी रहेंगे कि नहीं। किसी तरह वो रात कटी। इस पूरे अनुभव को लिखा तो एक किताब बन पड़ी, जिसे लोगों ने पसंद किया।

आपने खुद को 'नई वाली हिंदी' कथन से जोड़ा। डायरी से किताब तक का सफर तय कराने में यह कितना सहायक रही।

'नयी वाली हिंदी' कथन से मैंने खुद को नहीं जोड़ा. यह मेरी पहली किताब के प्रकाशक शैलेश भारतवासी और उनकी टीम का निकाला जुमला था। नए लोगों की जो भी किताबें आई, उसे नयी वाली हिंदी के बैनर तले डाल दिया गया। मेरा इससे जुड़ाव ब्लॉग के जरिए ही हुआ। हिंदी ब्लॉगिंग में मैं शुरू से ही जुड़ा रहा। बाद में यूनीकोड आ गया तो इंटरनेट पर हिंदी में लिखना आसान हो गया और इसका लाभ बहुत से नए लेखक-लेखिकाओं को मिला। इससे साहित्य की मठाधीशी भी कम हुई। हिंदी पत्रिकाओं की मोहताज नहीं रही और छपने के लिए बड़े-बड़े नामों के सम्पर्क में आना जरूरी नहीं रहा। इससे हिंदी में एक लोकतांत्रिक माहौल बना। मुझे लगता है बहुत आसान भाषा में बहुत गहरी बातें कह जाना आपको बड़ा लेखक बनाता है। आप निर्मल वर्मा से लेकर केदारनाथ सिंह तक की भाषा को देखें तो वह बहुत सरल है। नयी वाली हिंदी एक तरह से उसी सरलता का आग्रह है जिसके माध्यम से नए पाठकों को- जो हिंदी से उसके क्लिष्ट होने की वजह से दूर हो रहे हैं, हिंदी की तरफ लौटाया जा सके।

अक्सर गांव में रहने वाले या शहरों की ओर कूच कर चुके युवाओं को कहते सुना है, कि काश हम शहर में पैदा हुए होते तो......!! समाजिक विषमता (चाहे मातृ भाषा बोलने में शर्म हो या अंग्रेजी ना बोल पाने की असमर्थता या अवसर की तलाश में खुद को साबित करना) दर्शाते ऐसे कारणों को आप कैसे देखते हैं?

मुझे तो ठीक इसका उल्टा लगता है। अगर आप गांव से शहर आते हैं तो आप अपने साथ पूरा लोक लेकर आते हैं। आपके पास एक भरी-पूरी नयी दुनिया होती है जिसे शहर में बहुत कम लोग जानते हैं। अगर अपने लोक की अच्छी बातों को लेकर गर्व का भाव रहेगा तो अपनी लोकभाषा बोलने में कभी शर्म नहीं आएगी। अब तो पिथौरागढ़ में बैठा कोई 'ठेठ पहाड़ी' यूट्यूब पर ठेठ पहाड़ी भाषा में वीडियो बनाकर दुनिया भर में मशहूर हो रहा है। हीरा सिंह राणा जैसे लोक गायकों के गीत बहुत पसंद किए जा रहे हैं। ग्लोबल से लोकल की तरफ एक रुझान इस दौर की खासियत है इसलिए हमें भाषा और भूगोल को लेकर अपनी हीनभावनाओं से बाहर निकलना होगा। इस हीनभावना से निकलकर देखिए, लोग आपके स्वागत में खड़े मिलेंगे।

आप एक वीडियो ब्लॉगर भी हैं। यूरोप यात्रा पर आपने एक डॉक्यूमेंट्री बनाई है। हम अपने देश की पहाड़ी दर्शनिकता की तुलना अक्सर यूरोप की पहाड़ी सुंदरता से करते हैं। अक्सर सुंदर दार्शनिक स्थलों को स्विट्जरलैंड कहकर संबोधित करते हैं। पर्यटक को रिझाने के लिए कही गई यह बात कितनी उचित लगती है आपको?

इसमें मुझे कोई बुराई नहीं लगती। आप स्विट्जरलैंड को एक रिफरेंस के तौर पर इस्तेमाल करते हो क्योंकि उसे हिंदी फिल्मों के जरिए ज्यादा लोग जानते हैं। बस इतनी सी बात है। मुझे 2017 में यूरोप जाने का मौका मिला तो मुझे लगा इसे फिल्म भी कर लेना चाहिए। पेरिस, ल्यूसरन, यूंगफराओ, वेनिस, रोम और पीसा वगैरह की यह करीब हफ्ते भर की यात्रा थी जिसके यूट्यूब पर कुछ वीडियो बनाकर यात्राकार नाम के अपने चैनल पर डाले हैं। यूरोप में छोटे-छोटे गांवों में हर तरह की सुविधा है। हजारों फीट की ऊंचाई पर बने आल्प्स तक में सड़क पहुंचा दी है उन्होंने। हमारे पहाड़ों में सुविधाएं नहीं हैं वरना दुनिया के सबसे खूबसूरत भूगोलों में से एक तो यह है ही।

यात्राओं से संबंधित अपनी नई किताब के बारे में कुछ बताएं।

इस किताब का नाम है 'दूर दुर्गम दुरुस्त।' पूर्वोत्तर भारत की यात्रा के किस्से हैं इसमें। असम, अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर और नागालैंड में करीब महीने भर की यात्रा के दौरान मिले अनुभवों का संकलन है यह। पूर्वोत्तर के बारे में तमाम किस्म के पूर्वग्रह हैं हमारे देश में। उम्मीद है कि यह किताब उन पूर्वग्रहों को तोड़ेगी साथ ही, उस अचंभित कर देने की हद तक विविधता वाले भूगोल में झांकने का भी मौका पाठकों को मिलेगा।

नए युवा लेखकों से क्या कुछ कहना चाहेंगे।

यही कि लिखने और उसे लोगों तक पहुंचाने के लिए यह बेहतरीन समय है। खूब लिखें लेकिन उससे पहले खूब पढ़ें। जैसे एक डॉक्टर बिना पढ़े और इलाज करने की बारीकियां जाने बीमार का इलाज नहीं कर सकता वैसे ही एक लेखक बिना पढ़े और लिखने का शिल्प जाने अच्छा लेखक नहीं बन सकता है। केवल बाजार के लिए न लिखें। जो लिख रहे हैं, उसके समाज के साथ सरोकार हों यह भी जरूरी है।

DHF
दामोदर हरि फाउंडेशन
एक प्रयास अपनी संस्कृति थे लुकार बीच ली जाड़ू कु
संदीप शर्मा